वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में मूल्यपरकता की आवश्यकता

अनुज कुमार*

शिक्षा का सामाजिक सरोकार से जुड़ा होना आवश्यक है। इसके लिए शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्ति में व्यावहारिक रूप से मूल्यों का समावेश स्वयं ही हो जाए। सैद्धांतिक रूप से भले ही इसकी जितनी बातें होती रही हैं लेकिन वास्तव में ऐसा हो नहीं पा रहा है। मूल्यविहीन शिक्षा भोगवादी प्रवृत्ति को बल दे रही है। सिर्फ़ विषयों के ज्ञान से व्यक्ति में बदलाव नहीं होता है बल्कि इसका व्यावहारिक रूप भी सामने आना चाहिए। जैसे नागरिक शास्त्र पढ़कर लोग यातायात नियमों का पालन कर ही लें यह ज़रूरी नहीं या पर्यावरण को विषय के तौर पर पढ़कर भी लोग इसके प्रति सचेत हो जाएँ, ऐसा कम ही देखा जाता है। इस लेख में शिक्षा के पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों तथा शिक्षक की भूमिका से संबंधित सुझाव भी प्रस्तुत किए गए हैं।

मानव समाज का स्वरूप काफ़ी व्यापक और गतिशील है। विकास के पथ पर आगे बढ़ते हुए राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनों के साथ इसके अन्य पक्षों, जैसे – सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक व पर्यावरणीय आदि में भी बदलाव आ जाता है, कई बार इन पहलुओं में परिवर्तन सकारात्मक होते हैं और कई बार नकारात्मक। भूमंडलीकरण के दौर में वैज्ञानिक और आर्थिक स्तर के परिवर्तन सराहनीय कहे जा सकते हैं, परंतु दूसरी ओर सामाजिक एवं भौतिक पर्यावरण में आए परिवर्तन चिंता का विषय बनते जा रहे हैं।

आज दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत की संसद में ट्रांसपरेंसी इंटरनेशनल द्वारा जारी की गई ताज़ी रिपोर्ट का हवाले देते हुए भ्रष्टाचार की भयावहता पर गंभीर चिंता प्रकट की जाती

* *अध्यापक* (सामाजिक विज्ञान), जवाहर नवोदय विद्यालय, सिरमौर, जिला - रीवा, मध्यप्रदेश

है तब किसी भी संवेदनशील व्यक्ति के माथे की लकीरें गहरी हो जाती हैं। जिस सभ्य समाज को हम आए दिन अखबारों और अन्य जनसंचार माध्यमों के ज़रिये देखते, पढ़ते और सुनते हैं, तब यह एहसास होता है कि हम किधर जा रहे हैं? आज के समाज और नई विकसित संस्कृति ने हमारे मानस और चेतना में टकराहट पैदा कर दी है। पुरातन जीवन शैली और मूल्यों को हमने नकारा है। वर्तमान का नया स्वरूप, विरूप, परिवर्तित चरित्र उसके अपने स्वांग से ही सामने आया है। संस्कृतियों के वृत्त और केंद्र बदल गए हैं। जो सामने आया है वह नई चेतना को भी एक दृश्य प्रपंच से घेरे हुए है। भारत के सामाजिक परिवेश में एक बड़ा प्रश्न जीवन की दिशा का है। देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत एक ओर हमें देश के परंपरागत सामाजिक नैतिक प्रतिमानों के प्रति आकृष्ट करती है, वहीं नवीन आधुनिक परिवर्तन आधुनिकता के प्रति। नतीजन पीछे मुड़कर देखने की ज़रूरत फिर महसूस की जा रही है। यह आवश्यक नहीं कि आधुनिक विकासात्मक संदर्भों के साथ खुद को जोड़कर हम अपने आपको स्वयं के पारंपरिक जीवन मूल्य के प्रतिमानों से पूर्णतः अलग कर लें।

आज पूरे वैश्विक समाज को पुनःउत्थान की आवश्यकता है। इस पुनःउत्थान का कार्य करने में जो प्रक्रिया महवपूर्ण भूमिका निभा सकती है, वह है 'शिक्षा'। इस विषय पर लगभग सभी महान विचारक, दार्शनिक एवं शिक्षाविद् एक मत रखते हैं परंतु शिक्षा की प्रक्रिया भी परिवर्तनों से अछूती नहीं रहती है वरन् समाज के अन्य पहलुओं में आए परिवर्तनों से प्रभावित होती रहती है। शिक्षा की प्रक्रिया युग सापेक्ष होती है। युग की गति और उसके नए-नए परिवर्तनों के आधार पर प्रत्येक युग में शिक्षा की परिभाषा और उद्देश्य के साथ उसका स्वरूप भी बदल जाता है। यह मानव इतिहास की सच्चाई है। मानव के विकास के लिए खुलते नित नए आयाम शिक्षा और शिक्षाविदों के लिए चुनौती का कार्य करते हैं जिसके अनुरूप ही शिक्षा की नई परिवर्तित रूपरेखा की आवश्यकता होती है।

इसके लिए समय-समय पर दार्शनिकों, चिंतकों, विचारकों और शिक्षाविदों से सही दिशा मिलती ही है। साथ ही इसकी परिवर्तनकारी भूमिका को बल भी मिलता है। शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े सभी घटकों के लिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि वर्तमान संदर्भ में शिक्षा कैसी हो ?

प्रत्येक समाज एवं राष्ट्र के विकास में शिक्षा का विशेष महत्त्व है। इसलिए प्रत्येक देश मानवीय संसाधन को श्रेष्ठ, योग्य एवं प्रशिक्षित बनाने के लिए शिक्षा पर आश्रित होता है। सही शिक्षा का अर्थ केवल साक्षरता या योग्यता पा लेना नहीं है बल्कि अहम का विनाश, मानवतावादी बनना, सत्य को पाना और ईश्वर को लक्ष्य मानकर जीवन में आगे बढ़ना है। शिक्षा का क्षेत्र इतना व्यापक है कि जीवन का प्रत्येक पहलू कहीं न कहीं इससे जुड़ता हुआ प्रतीत होता है। शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर जब चर्चा होती है तो अनेक मंचों से एक स्वर मुखरित होता है जिसमें मूल्य शिक्षा या मूल्यों की बात की जाती है। हालाँकि इस पर नज़रिये अलग-अलग हैं परंतु एक बात पर तो सभी सहमत हैं कि हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में मानवीय तथा

संवैधानिक मूल्यों को यथा स्थान महत्त्व दिए जाने की आवश्यकता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। व्यक्ति से समाज और समाज से व्यक्ति का अस्तित्व जुड़ा हुआ है। व्यक्ति के आदर्शों, मूल्यों में बदलाव से समाज प्रभावित होता है। वहीं दूसरी ओर समाज के अंदर मूल्यों के परिवर्तन से व्यक्ति के मूल्यों में भी परिवर्तन आ जाते हैं। ज्ञानार्जन प्रक्रिया में कुछ ऐसे ज्ञान तत्व की कमी रह जाती है जिसका सीधा संबंध व्यक्तित्व विकास के साथ-साथ संपूर्ण मानव समाज से जुड़ा होता है। आज मनुष्य को विशिष्ट दिशा में अग्रसर करने में संपूर्ण शिक्षा प्रणाली अप्रासंगिक, दिशाहीन एवं निरर्थक सिद्ध हो रही है। ज्ञान का स्थान सूचना एवं शिक्षा का स्थान परीक्षा ने ले लिया है। परिणामस्वरूप, आज विश्व अत्यधिक ज्ञान विस्तार से पीड़ित है। केवल विषयों के ज्ञान से शिक्षा का लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता है। ज्ञान के विस्तार के अनुपात में हमारे समाज में जीवन मूल्य विकसित नहीं हो पाए हैं और वर्तमान व्यवस्था में यही दुख का मूल कारण है। शिक्षा और मानवीय मूल्यों में परस्पर संबद्धता का अभाव दिखाई पड़ रहा है।

जीवन मूल्यों के विश्वव्यापी क्षरण के संकट में हमें निश्चित रूप से मानवीय मूल्यों की शिक्षा की सोदेश्यता को स्वीकार करना ही होगा क्योंकि शिक्षा स्वयं में एक मूल्य है। शिक्षा संस्कार के लिए है। 'विद्या ददाति विनयम्' या 'श्रद्धावान लभते ज्ञानम्' ये उक्तियाँ सुसंस्कृत और सुशिक्षित मनुष्य की पहचान हैं। इस संदर्भ में सर्वप्रथम 'मूल्य' शब्द में निहित अर्थ को स्पष्ट करना आवश्यक होगा। मूल्य मूलतः नैतिक प्रत्यय है। यह ऐसा आधार है जो हमें उचित एवं अनुचित का बोध कराते हैं। मूल्य को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि मूल्य नियामक मानदंड हैं जिनके आधार पर मानव की चुनाव प्रक्रिया प्रभावित होती है तथा वे अपने प्रत्यक्षीकरण के अनुरूप विभिन्न क्रियाओं का चुनाव करते हैं।

सहज शब्दों में, मूल्य कोई नई वस्तु या विचार नहीं है बल्कि सुदृढ़ आत्मिक इच्छाशक्ति है। हम जिसे सम्मान देते हैं, चाहते हैं या महत्त्वपूर्ण समझते हैं, वही मूल्य है। यह मानवीय संरचना की अभिप्रेरणात्मक विद्या है। यह हमारे व्यवहार के लिए प्रेरणा स्त्रोत है। व्यक्ति का सम्मान और उसकी सामाजिक उपयोगिता तथा समाज की प्रगति में व्यक्ति की सक्रियता और सार्थक योगदान को 'मूल्य' ही निश्चित करते हैं। यह शिक्षा का केंद्रीय मर्म है। आज इसका लोप हो रहा है। मूल्यों के अभाव में शिक्षण कार्य की रोचकता समाप्त हो रही है। परिणामस्वरूप, शिक्षार्थी दिग्भ्रमित और अध्यापक असमंजस में दिखाई पड़ रहे हैं।

आज की शिक्षा मनुष्य को मनुष्य होने से ही वंचित कर रही है। वह व्यक्ति को वे तमाम चीज़ें सिखाती है जो मनुष्यता के लिए घातक हैं, जैसे – प्रतियोगिता, तुलना, महत्त्वाकांक्षा, अहंकार, परिग्रह, स्वार्थपरता आदि। ऐसा मालूम पड़ता है कि मनुष्य की बेहतरी के लिए किया जाने वाला उपक्रम ही उसे बदतर बनाये जा रहा है। भारतीय समाज और शिक्षा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रभाव और दबाव में जकड़ती जा रही है। हम पुनः नवउपनिवेशवादी एवं नवसाम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के घेरे की ओर बढ़

रहे हैं। नई तकनीक एवं प्रौद्योगिकी शिक्षा के कारण विश्व सहित भारत में एक नया उच्च शिक्षा प्राप्त वर्ग विकसित हुआ है। इस वर्ग में नई सोच और जीवन शैली विकसित हो रही है। यह जीवन शैली लोगों को अपने देश की सभ्यता, संस्कृति, आस्था, आध्यात्म, भाषा, परंपरा, पंचांग, इतिहास व स्थानीय परिवेश से काट रही है। एक नई प्रकार की अपसंस्कृति विकसित हो रही है। स्थापित मूल्यों की अवहेलना का भाव स्वस्थ शैक्षिक वातावरण को भी प्रभावित कर रहा है। मूल्यों को खोकर वर्तमान में हमने बहुत कुछ खो दिया है। आज जब दुनिया के सभी राष्ट्र भौतिक प्रभुत्व स्थापित करने की प्रतिस्पर्धा में खड़े हो गए हैं, मानवीय मूल्य व मानवीय संस्कृति की संवेदना शून्य सी हो गई है। भूमंडलीकरण के दौर में आध्यात्मिक जीवन मूल्यों तथा उदात्त सांस्कृतिक परंपराओं का लोक पराभव प्रारंभ हो गया है। समाज बौद्धिक दासता व कुंठित सांस्कृतिक पतन की ओर चल पड़ा है। ऐसी विषम परिस्थिति में हमारा समाज हृदयविहीन रोबोट तथा प्राणहीन यंत्रों द्वारा चैतन्य विश्व की गतिविधियों का संचालन कर आखिर किन मूल्य और मान्यताओं को स्थापित करना चाह रहा है? वास्तविक सच्चाई यह है कि यदि संस्कृति से मानवता एवं मूल्य निकाल दिए जाएँ तो न जीवन की कोई संज्ञा रह जाती है और न पहचान। मूल्यपरकता के अभाव में समाज में हिंसा, अपराध, मद्यपान की बढ़ती प्रवृत्ति, धनलोलुपता, स्थापित नियमों की अवहेलना, समाज के आधारभूत संस्थाओं के टूटने का खतरा यथा – एकल परिवार, तलाक आदि के रूप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। सामाजिक समरसता के स्थान पर फ़्लैटवाली संस्कृति ने पाँव पसार लिए हैं जिसमें स्वहित के अलावा और कोई मूल्य की आवश्यकता ही नहीं रही है। इन परिस्थितियों में यह जानना पुनः आवश्यक हो जाता है कि वर्तमान संदर्भ की शिक्षा व्यवस्था कैसी हो?

उच्च मूल्य व्यक्ति को आदर्श नागरिक बनाते हैं तथा उसके व्यक्तित्व निर्माण में अहम भूमिका का निर्वहन करते हैं। अतः जिस शिक्षा के जितने उच्च मूल्य होंगे वह उतनी ही उन्नत एवं भावी पीढ़ी के लिए विकासोन्मुख होगी। कोई मनुष्य महान तभी बन सकता है जब वह नैतिक मूल्यों की साधना करता है। अँगुलीमाल डाकू और वैशाली की नगरवधू आम्रपाली अपने जीवन में बौद्ध संघ के मूल्यों को आत्मसात कर भिक्षुक बन जाते हैं। एक साधारण जुलाहा कबीर के रूप में ख्याति प्राप्त कर लेता है, एक साधारण वकील गांधी के रूप में सत्य व अहिंसा के बल पर आंदोलन का नेतृत्व कर राष्ट्रपिता बन जाता है, वहीं पीड़ित मानवता की सेवा के बल पर मदर टेरेसा-संत के रूप में। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में वैसी मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता है जो विश्व नागरिकता की स्वधारणा का बोध कराते हुए विश्व बंधुत्व की भावना से ओत-प्रोत विश्वव्यापी शांतिपूर्ण संस्कृति के विकास में सहायक हो। क्षत-विक्षत होती सभ्यता की रक्षा के लिए भी नैतिक शक्ति की आवश्यकता है। आध्यात्मिक और मानवतावादी मूल्यों से सिंचित समाज ही उसकी रक्षा कर सकता है। प्रसिद्ध दार्शनिक व शिक्षाशास्त्री डॉ. राधाकृष्णन ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि — 'विश्व ने अनेक ऐसी सभ्यताएँ देखी हैं जिन

पर युगों की धूल जम चुकी है। हमने मान लिया था कि कैसा भी परिवर्तन और विकास क्यों न हो, पाश्चात्य सभ्यता का ठोस ढाँचा स्वयं में टिकाऊ और पूर्ण है किंतु अब हम देख रहे हैं कि वह कितने भयावह रूप में अवशेष के रूपों में है। नैतिक होना निरापद नहीं है, बुरी व्यवस्थाएँ अपने लोभ और अहंकार के कारण अपना विनाश कर लेती हैं। जो विजेता और शोषक मूल्यों की चट्टान से टकराते हैं वे अंततोगत्वा अपने ही विनाश के खड्ड में गिरते हैं।' आज अशांत विश्व में मूल्यों का मानव में अवतरण समस्त विश्व को वास्तविक समृद्धि का दर्शन कराएगा। वह समृद्धि, जो स्थायी होगी व्यक्ति के जीवन को उल्लास, हर्ष, आनंद से आप्लावित कर देगी। ऐसे भी देखा जाए तो मानवीय जीवन की वास्तविक समृद्धि का आधार उसके नैतिक जीवन में ही छिपा है।

आज शिक्षा में त्वरित परिवर्तन की आवश्यकता पहले से अधिक महसूस की जा रही है। स्वतंत्रता के बाद से लेकर वर्तमान तक हम अपनी शिक्षा प्रणाली में मूल्यपरकता का प्रभावी समावेश नहीं कर पाए हैं। यद्यपि स्वतंत्र भारत में जितने भी शिक्षा आयोग और समितियाँ बनी हैं सभी ने मूल्य-आधारित शिक्षा पर बल दिया है। भारतीय संसद ने 1996 में शिक्षा में सुधार पर विचार करने की दृष्टि से श्री शंकरराव चव्हाण की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया, जिसने मूल्य-आधारित शिक्षा और तदनुसार पाठ्यक्रम बनाने का सुझाव दिया। इस समिति के द्वारा सुझाए गए विचारों पर सर्वोच्च न्यायालय ने भी 2002 में अपने फैसले में मूल्य-आधारित शिक्षा की आवश्यकता को उद्धृत करते हुए कहा कि 'हमारी पीढ़ी पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते नकारात्मक कुप्रभावों से ग्रस्त है। भारत प्राचीन देश है जो वैविध्यों से भरा हुआ है। प्राचीन काल से भारत में महान संतों व दृष्टाओं की शृंखला रही है। यहाँ के विभिन्न धर्मों और संप्रदायों ने शाश्वत मूल्यों का उल्लेख शिक्षा का बीजारोपण करने के लिए किया है। धर्मों के आधारभूत मूल्यों से विद्यार्थियों का परिचय कराना है जिससे वे सभी धर्मों के दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन कर सकें।' माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में मूल्यपरकता की आवश्यकता को रेखांकित करने की दृष्टि से वैधानिक आधार भी प्रदान करता है। शालेय शिक्षा से विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा प्रदान करने वाली सभी संस्थाओं का यह दायित्व है कि विभिन्न उपागमों को अपनाकर शिक्षार्थी में मानवीय मूल्यों को आत्मसात कराएँ। चूँकि शिक्षा के सामाजिक सरोकार भी हैं, अतः जो शिक्षा सामाजिक दायित्व बोध विकसित नहीं कराती है वह व्यक्तिवादी और भोगवादी प्रवृत्ति को बल प्रदान करती है। शिक्षा के सामाजिक दायित्वों की पूर्ति तभी संभव होगी जब वह व्यक्ति में मानवीय मूल्यों और सामाजिक कार्यों को करने के लिए प्रतिबद्धता विकसित करे। वर्तमान विश्व की समस्याओं के समाधान की दृष्टि से शिक्षा को मूल्यों से जोड़ा जाना आवश्यक है। व्यावहारिक रूप से देखा गया है कि सिर्फ़ विषयों के ज्ञान मात्र से व्यवहार परिवर्तन नहीं हो पाता है। नागरिक शास्त्र पढ़कर भी लोग यातायात नियमों का पालन नहीं करते हैं। पर्यावरण संरक्षण की महत्ता के ज्ञान के बाद भी वास्तविक जीवन में पर्यावरण के प्रति सचेत नहीं होते हैं।

इसका कारण है शैक्षिक प्रक्रिया के दौरान भावात्मक स्तर पर परिवर्तन का प्रयास नहीं किया जाना। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में तथ्यों के संप्रेषण से आगे बढ़कर 'ब्लूम' की भाषा में व्यक्ति के तीन पक्षों यथा– ज्ञानात्मक, क्रियात्मक व भावात्मक स्तर के विकास अपेक्षित जान पड़ते हैं। सुदृढ़ परंपराओं से अत्यंत ओजस्वी, गहन और शाश्वत सत्य को मुखरित करने वाला ज्ञान भंडार भारत के प्राचीन ग्रंथों में समाहित है। हमारा देश ऐसा राष्ट्र है जिसमें सभी संस्कृतियों के मानवीय तत्वों को आत्मसात करने की क्षमता है। यह अपने नागरिकों को मूल्यों एवं पहचान से जोड़ती है तथा मानवीय व्यक्तित्व की मूल प्रवृत्तियों में संशोधन एवं परिमार्जन कर समाज के अनुकूल बनाती है।

हमारे देश के प्राचीन शिक्षा केंद्र यथा – तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, उज्जैन, मथुरा, वल्लभी, काशी आदि मूल्यपरक शिक्षा के लिए ही विश्वविख्यात रहे हैं। फिर हमने इनकी निरंतरता को कायम रखने में भूल की। शिक्षा में मूल्यपरकता के समावेश द्वारा हम ऐसी पीढ़ी तैयार कर सकते हैं जो भाग्यवादी-अवसरवादी न होकर श्रम संस्कारों द्वारा आत्मनिर्भर हो, निर्भीक होकर भ्रष्टाचार और अकर्मण्यता के विरुद्ध आवाज़ उठा सके। जातिवाद, वर्गभेद, सांप्रदायिकता से ऊपर उठकर प्रजातांत्रिक समाज व राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण कर सके।

इन परिवर्तनों की आरंभिक पहल परिवार के संस्कारों से ही करनी होगी। परिवार बालक की प्रथम पाठशाला है। यदि बचपन से ही माता-पिता का संस्कारयुक्त, विनययुक्त और मूल्यवादी दृष्टिकोण से आच्छादित परिवेश मिले, तो बालक संस्कारों से भरा मानव के रूप में तैयार होता है। अमेरिका के राष्ट्रपति लिंकन, मराठा छत्रपति शिवाजी, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को मनीषी के रूप में स्थापित करने में इनकी माता और पारिवारिक पृष्ठभूमि का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। अभिप्रेरक की दूसरी कड़ी में, अध्यापकों की भूमिका और उनका दायित्व भी महवपूर्ण है जिनके जीवन और आदर्शों से समाज सदा से प्रेरणा व दिशा ज्ञान लेता रहा है। शिक्षक समाज का दर्पण है। कोई भी अध्यापक जब शिक्षण कार्य करता है तब वह अपने साथ अपनी मान्यता, नज़रिया, विश्वास, सोच व मूल्यों को भी छात्रों के सम्मुख आदर्श के रूप में प्रस्तुत करता है। शिक्षक स्वयं भी मूल्यों को आत्मसात कर छात्रों के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत कर सकते हैं। कई बार जीवन मूल्यों को संप्रेषित करने वाले अध्यापक की करनी और कथनी का अंतर ही गुणों के विकास में अवरोधक बन जाता है। इस दृष्टि से हमें अध्यापक और शैक्षिक प्रशासकों की अभिवृत्ति में भी परिवर्तन लाने का प्रयास करना होगा। अध्यापक मूल्यों के प्रति अपने विश्वास को सुदृढ़ बनाएँ क्योंकि उनके द्वारा जीवन मूल्यों के अभिसिंचन से छात्रों में सद्गुणों का पौधा पल्लवित और पुष्पित होगा। परिस्थितियों और संस्कृति के प्रभाव के कारण अध्यापक की स्थिति में आई गिरावट को पुनः शीर्ष पर लाने की ज़िम्मेदारी स्वयं अध्यापकों की ही है।

भारतीय परंपरा में शिक्षा संस्थानों में आत्मोन्नति हेतु प्रार्थना का स्थान सर्वोपरि है। प्रार्थना मानसिक रूप से विद्यालय की गतिविधियों

में छात्र के एकाकार होने का माध्यम है। इस प्रार्थना का स्वरूप कुछ भी हो परंतु उससे हमारे हृदय में शुद्धता की लौ सुलगने लगती है। यद्यपि प्रार्थना को लेकर विवाद भी उभरते रहे हैं परंतु खुले विचारों से सोचने पर मूल्यपरकता का बीज यहीं से प्रस्फुटित होता है। भारत की आध्यात्मिक ज्ञान गंगा में तथा नैतिक व सांस्कृतिक परंपराओं में आज की वैज्ञानिक तकनीकी आधुनिक ज्ञान का मिश्रण करना है। सारा संसार एक विश्वविद्यालय है। सांसारिक जीवन के सभी उपयोगी अनुभव और क्रियाएँ, आदर्श, नैतिकता, एकता, अनुशासन, समय की पाबंदी, पारस्परिक सहयोग के तत्व पाठ्यक्रम में सम्मिलित किए जाने चाहिए। यद्यपि शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय सेवा योजना, राष्ट्रीय कैडेट कोर, भारत स्काउट व गाइड, योग शिक्षा, राष्ट्रीय गीत, समूह गान, राष्ट्रीय गणवेश, सामूहिक प्रतिज्ञा जैसी संस्थाएँ और क्रियाएँ हृदय की गहराई को स्पर्श करते हुए सद्‌गणों के प्रति ही सचेष्ट करते हैं। मूल्यपरक खेलों के आयोजन, महापुरुषों की जयंतियाँ ध्यान-साधना के शिविरों पर बल देकर वैचारिक सामर्थ्य को विकसित करने का प्रयास सफलीभूत होता दिखाई पड़ता है।

शैक्षिक उपलब्धियों के मूल्याँकन में भी नैतिक व मानवीय मूल्यों की पृष्ठभूमि होना अनिवार्य करना समय की आवश्यकता है। शिक्षा में मूल्यपरकता के विविध उपागमों के द्वारा भारत पुनः विश्व गुरु की उपाधि प्राप्त कर लेगा। ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।